मुंशी प्रेमचंद के उपन्यासों में सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक चिंतन

जितेन्द्र कुमार मौर्य

शोध छात्र हिन्दी विभाग

रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय

जबलपुर (म.प्र.)

शोध–सार

प्रेमचन्द जी के सामाजिक उपन्यासों में दलित चेतना संवेदनाएँ, मानवीय कमजोरियां, जीजीविषा, प्रतिकार एवं शोषण करने की प्रकृति इन सब की चितला हर एवं व्यवस्थाएँ सामाजिक उपन्यासों में देखने को मिलती हैं, प्रेमचन्द के साहित्य के साथ–साथ गाँधी, डॉ. पी. आ अधेडन, ज्योति राव फूले जैसे प्रयोगवादी विचारों एवे लेखकों के दायित्व ने समाज को चेतन करने का प्रयोग किया। इन सबका लक्ष्य था कि समाज में समानता रूपी विचारधारा हो तथा किसी प्रकार की आपस में मानव–मानव के बीच कोई भी भेदभाव न हो समानता तथा बन्धुत्व को जमीन पर लाने का श्रेय डॉ. अम्बेडकर को जाता है और मुंशी प्रेमचन्द जैसे महान उपन्यासकार को भी, भारतीय सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में सदियों से जीवन की स्वाभाविक मुख्यधारा से वंचित लोगों में अपने अतीत की दुर्दशा से सीख लेकर आयी अधिकारों को प्राप्त करने की जिजीविषा स्वाभिमान पूर्वक अपने होने को टटोलने की बौद्धिक प्रक्रिया दलित चेतना है। इस चेतना के माध्यम से उनके अन्दर उनके पूर्वजों की विवशताएँ प्रतिकार स्वरूप कुलाचे मारने लगी हैं।

 Copyright ⓒ 2020Authors

मुंशी प्रेमचंद के उपन्यासों में सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक चिंतन

जितेन्द्र कुमार मौर्य

शोध छात्र हिन्दी विभाग

रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय

जबलपुर (म.प्र.)

शोध–प्रपत्र

प्रेम के उपन्यासों में चेतना और संवेदना का आपस में समन्वय है। इन उपन्यासों के द्वारा आजादी के पूर्व का सामाजिक व्यवहार और सिद्धांतों की गोरिया को व्यक्त किया। इसके अतिरिक्त संघर्षमय जीवन को समाज के समक्ष उजागर किया और समाज को चेतन करने का प्रयास किया।

प्रेमचन्द द्वारा लिखित उपन्यास गोदान में धनिया नामक पात्र ने अपनी चेतना के माध्यम से संवेदनाओं को व्यक्त करने का प्रयास किया। धनिया इतनी व्यवहार कुशी न थी। उसका विचार था कि हमने जमींदार के खेत जोते हैं। तो वह अपना लगान ही तो लेगा। उसकी खुशामद क्यों करें, उसके तलवे क्यों सहलाएँ, यद्यपि अपने विवाहित जीवन के बीस बरसों में उसे अच्छी तरह अनुभव हो गया था कि चाहे कितनी ही कतर–चोंत करो, कितना ही पेट तन काटो, चाहे एक–एक कौड़ी को दांत से पकड़ो मगर लगान बेबाक देना मुश्किल है।''1 फिर वह भी हार न मानती थी और इस विषय पर स्त्री–पुरूष में आये दिन संगाम छिड़ा रहता था उसकी छः सन्तानों में अब केवल तीन जिन्दा हैं एक लड़का गोबर कोई सोहल साल का और दो लड़कियां सोना और रूपा, बारह और आइ साल की। तीन लड़के बचपन में ही मर गए। उसका मन आज भी कहता था, अगर उनकी दवादारू होती तो वे बच जाते, पर वह एक ढेले की दवा भी न मंगवा सकी थी उसकी ही उम्र अभी क्या थी।

प्रेमचन्द एक मनोविकार के एक सच्चे इतिहासकार रहे हैं, उन्होंने अपने पात्रों का सृजन किया। इसके साथ–साथ समाज की सच्चाई से अवगत कराया। प्रेमाश्रय नामक उपचारों में बहुत से पात्रों को व्यक्त करके समाज के समक्ष विभिन्न कमजोरियों का पठाक्षेप किया। बुरा नहीं समझता, उसके कुपरिणाम का भय एक गौरवपूर्ण धैर्य की शरण लिया करता है। मनोहर अब इस विचार से अपने की शकित देने लगा। मैं बिगुल जाऊँगा तो बला से पर किसी की धौंस तो न सहूँगा, किसी के सामने सिर तो नीचा नहीं करता। जमींदार भी देख लें कि गाँव में सब–के–सब भाँड ही नहीं हैं, अगर कोई मामला खड़ा किया तो अदालत में हामिक के सामने सारा भंडा फोड़ दूंगा जो कुछ होना देखा जायेगा।

 Copyright ⓒ 2020Authors

इसी उधेड़बुन में वह भोजन करने लगा। चौके में एक मिट्टी के तेल का चिराग जल रहा था। किन्तु छत में धुंआ इतना भरा हुआ था कि उसका प्रकाश मन्द पड़ गया था। उसकी स्त्री विलासी ने एक पीतल की थाली में बथुए की भाजी और जौ की कई मोटी–मोटी रोटियाँ परस दीं। मनोहर इस भाँति रोटियाँ तोड़–तोड़ मुंह में रखता था जैसे कोई दवा खा रहा हो। इतनी ही रूचि से वह घास भी खाता। बिलासी ने कहा क्या साग अच्छा नहीं? गुड दूं?

हम दैहिक पराधीनता से मुक्त होना तो चाहते हैं। पर मानसिक पराधीनता में अपने आपको स्वेच्छा से जकड़ते जा रहे हैं। किसी राष्ट्र या जाति का सबसे बहुमूल्य अंग क्या है? उसकी भाषा, उसकी सभ्यता, उकसे विचार, उसका कलचर। यही कलचर हिन्दी को हिन्दू मुसलमान को मुसलमान और ईसाई को ईसाई बनाये हुए है। मुसलमान इसी कलचर की रक्षा के लिए हिन्दुओं से अलग रहना चाहता है, उसके भय है कि सम्मिश्रण से कहीं उसके कलचर का रूप ही विकृत न हो जाये। इसी तरह हिन्दू भी अपने कलचर की रक्षा करना चाहता है, लेकिन क्या हिन्दू और क्या मुसलमान, दोनों अपने कलचर की रक्षा की दुहाई देते हुए भी उसी कलचर का गला घोंटने पर तुले हुए हैं।

गायत्री– मेरी समझ में तो यह श्रद्धा का अन्याय है जिस पुरूष के साथ विवाह हो गया। उसके साथ निर्वाह करना प्रत्येक कर्मनिष्ठा नारी का धर्म है।

ज्ञान चाहे पुरूष नास्तिक और विधर्मी हो जाय?

गायत्री– हाँ में तो ऐसा ही समझता हूँ। विवाह स्त्री पुरूष के अस्तित्व को संयुक्त कर देता है। उनकी आत्माएँ एक दूसरे के समाविष्ट हो जाती हैं।

ज्ञान– पुराने जमाने में लोगों के विचार ऐसे रहे हों पर नया मन इसे नहीं मानता। वह स्त्री को सम्पूर्णतः स्वाधीन ठहराता है। यह मनसा वाचा कर्मणा, किसी के अधीन नहीं है। परमात्मा से आत्मा का जो घनिष्ठ सम्बंध है उसके सामने मानवकृत सम्बन्ध की कोई हस्ती नहीं हो सकती। पश्चिम के देशों में आये दिन धार्मिक मतभेद के कारण तलाक होते रहते हैं।

आखिर फिल्म एक्ट्रेसों की दिन–दूरी रात–चौगुनी बढ़ती देखकर वेश्याओं की आँखें भी खुल ही गयी हैं। ये बेचारी दस–दान साल तक रियास करें, फिर भी सयास में इनका कहीं स्यान नहीं है, शहरों से निकाली जाती है। कोई भला आदमी बिना अपनी इज्जत में बट्टा लगाये उनसे बोल नहीं सकता। लोग उनके साये से भी बचते हैं। **कुछ जमींदार, ताल्लुकेदार पुरूष उनके कर करदानों में थे और अक्सर सेठ साहूकारों की महफिलों में मंगलामुखियों का आदर होता या पर ज्ञान नन्दी ने दोनों ही का काफिया तंग कर दिया है। अब इन गरीबों का भार कौन संभाले। सरकारी नौकरों में तो इतनी जान ही नहीं रहती है, थानेदार और डिप्टी मजिस्ट्रेट जरूर उन्हें सरफराज दिया करते हैं। मगर ये लोग सबसे बेगार में काम लेते हैं। वेश्याओं को उनसे क्या फैम पहुँच सकता हो उदार फिल्म की एक्ट्रेस है कि गाने में थोड़ा शुद–बुद आ गया, बस स्टार बन बैठी। पत्रिकाओं में उनके चित्रों पर लोगों की आँखें जमने लगीं। अच्छे–अच्छे समाचार पात्रों में उनकी एक्टिंग की तारीकों के पुल बाँधे जाने लगे।''**[2]

यों समझो कि अछूत मानो ईसाई हो गया। अब उसे कौन अछूत कह सकता है। अब वह साहब है और लोग उसे साहब कहते हैं। तो अब मंगलामुखियों ने सिनेमा पर धावा बोल

 Copyright ⓒ 2020Authors

देने का निश्चय किया है और रसिकों के शहर लखनऊ की वेश्याओं ने एक संख्या की सृष्टि भी कर डाली है। जिसका काम होगा कि वह वेश्याओं को सिनेमा क्षेत्र में लाये। अब सभी जातियों में जाग्रति फैल रही है तो वेश्याओं में क्यों न फैलती और लखनऊ की वेश्याओं में जो वर्तमान युग के वेश्याओं का कैपिटल है, एक बार वह सिनेमा में घुस जाये, फिर वही लोग जो उसके कोठों की और ताकना ऐब समझते हैं। तब उन्हें निमंत्रित कर अपने को धन्य समझेंगे। उनकी तसवीरें दीवानखानों की शोभा बढ़ायेंगी। जहाँ थोड़े से रसिकों तक ही उनकी कीर्ति सीमित रहती थी, वहाँ एक ही वक्त लाखों आदमी उनके कला–कौशल पर मुग्ध होंगे।

मुंशी प्रेमचंद का अविश्मरणी उपन्यास वरदान में ईष्या को नष्ट किया है। ईर्ष्या एक प्रकार का निश्ग्रीक एवं प्राकृतिक गुण है। जिसके आधार पर यह एक प्रकार से जीवन को गुठन है। जिसके अन्दर बहुत सी विसंगतीयों और दुराभाव है। ईर्ष्या वास्तव के जिस आधार पर ओ जावे ये मनुष्य की बहुत बड़ी कमजोरी है। प्रेमचन्द ने वरदान में निरंजन और प्रतापचन्द का पत्थर बताया अज्ञैर उनका त्याग भी अर्थात इन दोनों पात्रों में प्रेमाकांक्षा बड़ी प्रबल थी। पर इसके साथ ही उसे दमन की भी असीम शक्ति भी प्राप्त थी। घर की एक–एक वस्तु उसे विरजन का स्मरण कराती रहती है। यह विचार एक क्षण विरजन मेरी होती, तो ऐसे सुख से जीवन व्यतीत होता। परन्तु विचार को वह हटाता रहता था। पढ़ने बैठता तो पुस्तक खुली रहती और ध्यान अन्यत्र जा पहुंचता। भोजन करने बैठता तो विरजन का चित्र नेत्रों में फिरने लगता। प्रेमाग्नि को दमन की शक्ति से दबाते उसकी अवस्था ऐसी हो गयी मानो वर्षों का रोगी है। प्रेमियों को अपनी अभिलाषा पूरी होने की आशा हो या न हो, परन्तु वे मन–ही मन अपनी प्रेमिकाओं से मिलने का आनन्द उठाते रहते हैं। वे भाव संसार में अपने प्रेम–पात्र से वार्तालाप करते हैं, उसे छेड़ते हैं, उससे रूठते हैं, उसे मनाते हैं और इन भावों में उन्हें तृप्ति होती है और मन को एक सुखद और रसमय कार्य मित्र जाता है। परन्तु कोई शकित उन्हें इस आवोद्यान की सैर करने से रोके, यदि कोई शक्ति उन्हें ध्यान में भी उस प्रियतमा का चित्र न देखने दे, तो उन अभागे प्रेमियों की क्या दशा होगी? प्रताप इन्हीं अभागों में या इसमें संदेह नहीं कि यदि वह चाहता तो सुखद भावों का आनन्द भोग सकता था।

भाव संसार की भ्रमण सुखमय होता है, पर कठिनता तो यह भी कि वह विरमन का ध्यान भी कुत्सित वासनाओं से पवित्र रखना चाहता था। उसकी शिष्या ऐसे पवित्र नियमों से और उसे ऐसे पवित्रात्माओं और नीतिपरायण मनुष्यों की संगति से लाभ उठाने के अवसर लिये थे कि उसकी दृष्टि में विचार की पवित्रता की भी उतनी ही प्रतिष्ठा भी जितनी आचार की पवित्रा की। **यह कब सम्भव था कि वह विरजन को जिसे कई बार बहन कह चुका था और जिसने अब भी बहन समझने का प्रयत्न करता रहता था। ध्यानपस्थ में भी ऐसे भावों का केन्द्र बनाता, जो कुवासनाओं से भले ही शुद्ध हो, पर मन के दूषित आवेगों से मुक्त नहीं हो सकते थे जब तक मुंशी जी संजीवनलाल विद्यमान थे, उनका कुछ न कुछ समय उनके संग ज्ञान और धर्म–चर्चा के कट जाता था।**''[3] जिससे आत्मा को सन्तोष होता था। परन्तु उनके चले जाने के पश्चात् आत्म–सुधार का यह अवसर भी जोता रहा। वरदान दो प्रेमियों की दुखात कथा है। ऐसे दो प्रेमी जो बचपन में साथ–साथ खेले, जिन्होंने तरूणाई के भावी जीवन की सरल और कोयल कल्पनाएँ संजोई जिनके सुन्दर घर के निर्माण के अपने विचारधारा थीं। किन्तु उनकी कल्पनाओं का महल शीध्र ढह गया।

 Copyright ⓒ 2020Authors

प्रेम चन्द्र के उपन्यास वरदान में सुदामा अष्टभुजा देवी से एक ऐसे सपूत का वरदान माँगती है, जो जाति की भलाई में संलग्न हो। सुदामा का पुत्र प्रताप एक ऐसा पात्र है जो दीन–दुखियों, रोगियों, दलितों की निस्वार्थ सेवा करता है। इसमें विरजन और प्रताप की प्रेम कथा भी है, और विरजन तथा कमलाचरण के अनमेल विवाह का मार्मिक प्रसंग। इसी तरह एक माधवी है, जो प्रताप के प्रति भाव से भर उठती है, लेकिन अंत में वह संन्यासी हो मोहपाश में बाँधने की जगह स्वयं योगिनी बनना पसंद करती है।

प्रताप के मन में रोगियों और दलितों के प्रति सेवा की भावना थी स्नेह और कर्तव्य पर विजय प्राप्त करने की लालसा थी इसके साथ–साथ जीवन जीने के उत्कृष्ट आकांक्षा भी प्रताप में त्याग की भावना के साथ दूसरों की मदद करने में हमेशा अच्छा लगता था, प्रताप ने विरमन को परम करूणार्थ शोक–पत्र लिखा पर पत्र लिखता जाता था और सोचता जाता था कि उसका इस पर क्या प्रभाव होगा, सामान्यतः संवेदना प्रेम को प्रोढ़ करती है क्या आश्चर्य है जो यह पत्र कुछ काम कर जाये, इसके अतिरिक्त उसकी धार्मिक प्रकृति ने विकृत रूप धारण करके उसके मन में यह मिथ्या विचार उत्पन्न किया कि ईश्वर ने मेरे प्रेम की प्रतिष्ठा की और कमलाचरण को मेरे मार्ग से हटा दिया, मानो यह आकाश से आदेश मिला है कि अब में विरजन से अपने प्रेम का पुरस्कार लूँ। प्रताप यह तो जानता था कि विरजन से किसी ऐसी बात की आशा करना, जो सदाचार और सभ्यता से बाल बराबर भी हटी हुई हो, मूर्खता है, परन्तु उसे विश्वास था कि सदाचार और सतीत्व के सीमान्तर्ग यदि मेरी कामनाएँ पूरी हो सकें तो विरजन अधिक समय तक मेरे साथ निर्दयता नहीं कर सकती।

कभी–कभी जीवन में ऐसी घटनाएँ हो जाती हैं जो क्षणमात्र में मनुष्य का रूप पलट देती हैं। कभी माता–पिता की एक तिरछी चितवन पुत्र को सुयश के उच्च शिखर पर पहुँचा देती है और कभी स्त्री की एक शिक्षा पति के ज्ञान–चक्षुओं को खोल देती है। गर्वशील पुरूष अपने संगों की दृष्टियों में अपमानित होकर संसार का भार बनना चाहते हैं।''[4] मनुष्य को जीवन में ऐसे अवसर ईष्वरदत्त होते हैं। प्रतापचन्द्र के जीवन में भी वह शुभ अवसर या अब वह संकीर्ण गलियों में होता हुआ गंगा बिजनोर आकार बैठा और शोक तथा लज्जा के अश्रु प्रवाहित करने लगा। मनोविकार की प्रेरणाओं ने उसकी अवोगति में कोई कसर उठा न रखी थी, परन्तु उसके लिए यह कठोर कृपालु गुरू की ताड़ना प्रमाणित हुई।

क्या यह अनुभवसिद्ध नहीं है कि विष भी समयानुसार अमृत का काम करता है? प्रताप नामक पात्र अवसाद है परन्तु उसके साथ–साथ आत्मचिंत करने की क्षमता भी हो अच्दा बुना सोचता है उनका मूल्यांकन करता है तथा अतीत की स्मृतियाँ उसके मस्तिकष्क में बार–बार कहर देती है कि तुम अपने आप को बदलो और अच्छे इन्सान बनो, परन्तु समय महान होता है जिसके साथ क्या घटना घट जाये और आपकी भावनाऐं कब बदल जायें। यह सब मनोविकारों का तत्कालीन रूप है।

मनुष्य का हृदय अभिलाषाओं का क्रीड़ास्थल और कामनाओं का आवास है। कोई समय वह था जबकि माधवी माता के अंक में खेलती थी। उस समय हृदय अभिलाषा और चेष्टाहीन था। किन्तु जब मिट्टी के घरौंदे बनाने लगी उस समय मन में यह इच्छा उत्पन्न हुई कि मैं भी अपनी गुड़िया का विवाह करूँगा। सब लड़कियाँ अपनी गुड़िया व्याह रही है, क्या मेरी गुड़िया कुवारी रहेगी, मैं अपनी गुड़िया के लिए गहने बनवाऊँगी, उसे वस्त्र पहनाऊँगी, उसका विवाह

 Copyright ⓒ 2020Authors

रचवाऊँगी। इस इच्छा ने उसे कई मास तक रूलाया।''[5] पर गुड़ियों के भाग्य में विवाह न बदा था। एक दिन मेघ घिर आये और मूसलाधार पानी बरसा। घरौंदा वृष्टि में बह गया और गुड़ियों के विवाह की अभिलाषा अपूर्ण ही रह गयी। पर प्रताप का चन्द्र चित्र खींचना आरम्भ किया। उन दिनों इस चर्चा के अतिरिक्त उसे कोई बात अच्छी ही न लगती थी। निदान उसके हृदय में प्रतापचन्द्र की चेरी बनने की इच्छा उत्पन्न हुई। पड़े–पड़े हृदय से बातें किया करती। रात्रि में जागरण करके मन का मोदक खाती।

इन विचारों से चित पर एक उन्माद सा छा जाता है। किन्तु प्रतापचन्द्र इसी बीच में गुप्त हो गये और उसी मिट्टी के घरौंदे की भाँति ये हवाई किले भी ढह गये। आशा के स्थान पर हृदय में शेक रह गया।

सौभाग्य से उनका प्रसाद निर्मित हो चुका था। अब वह दूसरों को आश्रय देने पर तैयार थे, उनकी धान्यशाला परिपूर्ण हो चुकी थी। अब उन्हें भिक्षुकों से घृणा न थी। सम्यात्तिशाली होकर वह उदार, दयालु, दीनवत्सल और कर्तव्य परायण हो गये थे। लाला प्रभाशंकर की पुत्रियों के विवाह में उन्होंने खासी मदद की थी और पुत्रों के मातम में शरीक होने के लिए भी गोरखपुर से आये थे। प्रेम शंकर के प्रति भ्रातृ–प्रेम जाग्रत हो गया, यहाँ तक कि लखनपुर वालों के मुकत हो जाने पर उन्हें बधाई दी। गायत्री की मृत्यु का शोक समाचार मिला तो उन्होंने उसका संस्कार बड़ी धूमधाम से किया और कई हजार रूपये खर्च किये। उनकी यादगार में एक पक्का तालाब खुदवा दिया। जब तक वह फूस के झोपड़े में रहते थे, आग की चिनगारियों से डरते थे।

उनका पक्का महल था, फुल्झड़ियो का तमाशा सावधानी से देख सकते थे। वह बातें करते–करते भोजन का समय आ पहुँचा। लोग भोजन करने गये। मायाशंकन ने भी पूरियॉ दूध में मलकर खायीं, दूध पिया और फिर लेटे। थोड़ी देर में लोग खा–पीकर आ गये। गाने–बजाने की ठहरी। कल्लू ने गाया। कादिर खाँ ने दो–तीन पद सुनाये। रामायण का पाठ हुआ। सुखदान ने कबीर पन्थी भजन सुनाये। कल्लू ने एक नकल की। दो–तीन घण्टे खूब चहल–पहल रही। माया को बड़ा आनन्द आया। उसने भी कई अच्छी चीजें सुनायी। लोग उनके स्वर माधुर्य पर मुग्ध हो गये। अब तक समान्त संसार में यह कायदा था कि नारी को एक ही काम के लिए पुरूषों से कम मजूरी मिलती थी।

पुरूष चार आने पाता है तो नारी को तीन आने ही दिए जाते हैं। शायद यह धारणा हो कि नारी पुरूष के बराबर काम नहीं कर सकती या यह कि पुरूष को एक परिवार का पालन करना पड़ता है और नारी जो कुछ पाती है सब अपने ही ऊपर खर्च करती है।''[6] लेकिन समय बदल रहा है या बदल गया है और अब नारियों ने सिद्ध कर दिया है कि बहुत से कार्यों में पुरूषों के बराबर ही नहीं पुरूषों से जयादा काम करती हैं। रहा परिवार का सवाल तो अब यह जरूरी नहीं रह गया कि नारी परिवारहीन हो। इस बेकारी के जमाने में कितने ही पुरूष अपनी पत्नियों की कमाई पर गुजर–बसर करते हैं और अब तो अविवाहित स्त्री भी पिचकारियों द्वारा संतानवती हो सकती है, फिर किस कायदे से उसको कम वेतन दिया जाये, हाँ नारियों से हमारा नम्र निवेदन है कि अब वे एकान्त भोग की बस छोड़ें और अपने बेकार पुरूषों की उसी तरह नाजबरदारी करें जैसे– पुरूष अब तक अपनी बेकार स्त्रियों की करता रहा है।

 Copyright ⓒ 2020Authors

सन्दर्भ सूची

1– प्रकाश मनु– बीसवीं शती के अंत में उपन्यास, पृ.171

2– प्रभा खेतान (अनुवादक), स्त्री उपेक्षिता, पृ.11

3– चित्रा मुदगल– एक जमीन अपनी (उपन्यास), पृ.95

4– गोपाल राय– हिन्दी उपन्यास का इतिहास (लेख–दरवाजे पर दस्तक), पृ.7

5– गिरिजा राय– हिन्दी अनुशीलन (त्रैमासिक), लेख समकालीन सृजन परिदृश्य, पृ. 107

6– आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक एवं आर्थिक चेतना, पीताम्बर सरोर्द, पृ. 68

Copyright ⓒ 2020Authors